अंग्रेजी-राज का बढ़ता चलन

जीवन के हर क्षेत्र में अंग्रेजी पर जरूरत से ज्यादा निर्भरता से सामाजिक खाई और अधिक चौड़ी होती देख रहे हैं गिरीश्वर मिश्र

वैसे तो तकनीकी तौर पर पंद्रह अगस्त 1947 को अंग्रेजी राज भारत से कूच कर चुका है और देश शासन की दृष्टि से 'उत्तर अंग्रेजी राज' के जमाने में आगे बढ़ रहा है। आज राजनीतिक रूप से एक स्वतंत्र जनतांत्रिक राष्ट्र के रूप में भारत सातवें दशक में प्रवेश भी ले चुका है, पर अंग्रेजी का राज बदस्तूर जारी है। हम सब उसी की छाया में जी रहे हैं। जीवन का कोई भी कोना अंतरा नहीं है जहां हम अपनी भारतीय भाषा से काम चला सकें। आज हम इस बात के लिए मजबूर हैं कि हमारा काम अंग्रेजी के सहारे ही चल सकेगा। शिक्षा, व्यापार, स्वास्थ्य, कानून जैसे जीवन के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में हम अंग्रेजी के बिना पंगु बने हुए हैं। हर जगह प्रामाणिक जानकारी पाने और सामान्य व्यवहार को संचालित करने के लिए हम सब अंग्रेजी की बैसाखी पर निर्भर हैं। डॉक्टर का नुस्खा हो या दवा का खोखा और उसके अंदर रखा रोगी के लिए निर्देश, सरकारी आदेश-निर्देश हों या डाकघर, बैंक और अस्पताल के आवेदन पत्र, विभिन्न दुकानों के नाम पते और विज्ञापन हों या कोर्ट-कचहरी में चलने वाले तरह-तरह के कागजात, सिनेमा का टिकट हो या दुकानदार से मिलने वाली सामान खरीदी की रसीद-ये सब के सब अभी भी ज्यादातर अंग्रेजी में ही हैं। परिणाम यह है कि आम जनता को कुछ पता ही नहीं चलता कि वह क्या करे और कैसे करे? उसे यह भी मालूम नहीं होता कि उसके साथ क्या हो रहा है-उससे छल हो रहा है, धोखा दिया जा रहा है या न्याय किया जा रहा है? ऊंची कचहरियों की तो बात ही और है।

हमारी निराली न्याय व्यवस्था में उच्च और सर्वोच्च न्यायालय में अंग्रेजी न जानने वालों का प्रवेश नियमतः वर्जित है। वहां पहुंचने के लिए अंग्रेजी ही एकमात्र सीढ़ी है। अर्थात हिंदी या किसी अन्य भारतीय भाषा का प्रयोग करने वाले के लिए न्याय की गुहार लगाने की भी सुविधा उपलब्ध नहीं है। भाषाई भेदभाव की व्यवस्था और उसके चलते व्यवस्था की प्रक्रिया में सीधी भागीदारी न होने के कारण अधिसंख्य भारतीयों के लिए सार्वजनिक व्यवस्था में पारदर्शिता लगभग न के बराबर ही रहती है। हमें यह याद रखना होगा कि अंग्रेजी समझने वालों का प्रतिशत भारत की पूरी जनसंख्या में दस प्रतिशत भी नहीं है तो सारा ताम-झाम सिर्फ और सिर्फ दस प्रतिशत लोगों के हित-साधन की चिंता को लेकर है। आज ई-गवर्नेंस और सुशासन जैसे मुहावरे बड़े लोकप्रिय हो रहे हैं। जनता की भागीदारी के लिए भी आवाहन किया जा रहा है। यह

अधिकारों का हनन

◆ अपनी भाषा में जरूरी सूचना और ज्ञान के स्रोत उपलब्ध न कराना एक प्रकार से मूल अधिकारों और मानव अधिकारों का हनन सरीखा होगा

निश्चय ही एक शुभ लक्षण है, पर इसे अंजाम देने के लिए जरूरी है कि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से यह व्यवस्था लागू हो। उनके विकास पर ध्यान दिया जाए और उन्हीं को माध्यम बनाया जाए। अंग्रेजी पर बल देने से सामाजिक रूप से उपेक्षित और वंचित की उपेक्षा ही होगी। सूचना प्रौद्योगिकी को हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति उदार बनाना होगा ताकि बाजार, सेवा-क्षेत्र, जन-संचार, ग्राहक सेवा, आदि के संचालन में जन-जन की भागीदारी हो। भाषा का प्रश्न देश के मानस के निर्माण से भी जुड़ा हुआ है।

अपनी भाषा में सोचना और व्यक्त करना सरल ही नहीं होता, बल्कि मौलिकता और सृजनात्मकता को भी बढ़ावा देता है। दूसरी ओर अंग्रेजी पर निर्भरता एक प्रकार की अनुवादी मानसिकता को जन्म देती है और अपने यथार्थ को आरोपित श्रेणियों में रखकर देखने को मजबूर करती हैं। नए आविष्कार और खोज के लिए हमारे मानस को स्वतंत्र होना होगा। यह स्वतंत्रता अपनी स्वाभाविक भाषा को समर्थ बनाने से ही आएगी, न कि किसी परायी भाषा पर निर्भरता से। इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि स्वामी विवेकानंद, महर्षि श्रीअरविंद, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और गुरुदेव रवींद्र नाथ टैगोर जैसे युगपुरुष आज के अंग्रेजीदां भारतीयों से कहीं ज्यादा अच्छी तरह पश्चिम के साहित्य, संस्कृति और संस्कार से परिचित थे। इन सबने भारतीय और पाश्चात्य, दोनों ही संस्कृतियों का अनुभव और अध्ययन किया था। अपने विश्लेषण में इन सब लोगों ने भारतीय दृष्टि और सभ्यता को तरजीह दी। इन सभी ने बिना किसी दबाव के खुद अपने विवेक और निजी निर्णय से स्वयं को भारतीयता के लिए अर्पित किया। यह अचरज स्वतंत्रता मिलने के पूर्व शुद्ध ब्रितानी अंग्रेजी राज में हुआ। सांस्कृतिक विवेक की चुनौती आज के भारतीय अंग्रेजी-राज में और भी गहरी हुई है। किसी मत, पंथ या पार्टी से अलग हटकर यह सोचने की जरूरत है कि भारत की जीवनी शक्ति क्या है और उसकी रगों में कौन से अनुभव, ज्ञान और संस्कार के तत्व प्रवाहित हो रहे है? वाचिक परंपरा और संवाद की लंबी परंपरा वाले इस देश में आज हमारी स्मृति, सोच और उसके उपयोग को लेकर चिंताएं गहराती जा रही हैं।

शैक्षिक दृष्टि से हमारा देश पिछड़ा हुआ है और शिक्षा के स्तर को सुधारना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए। कंप्यूटर से आज मानवीय क्षमताओं का पूरा परिदृश्य ही बदल रहा है और किन्हीं अर्थों में यह हमें समर्थ बना रहा है। यह सब अधिकांशतः अंग्रेजी की बिना पर है और इनके प्रयोग के लिए अंग्रेजी जरूरी है। आज कल ई-लर्निंग और ई-क्लास शुरू हुई है। पर ये सुविधाएं अधिकांशतः अंग्रेजी में हैं। इसकी जरूरत हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में अधिक है। अच्छा तो यह होता कि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में यह प्रयास पहले होता। अपनी भाषा में जरूरी सूचना और ज्ञान के स्रोत उपलब्ध न कराना एक प्रकार से मूल अधिकारों और मानव अधिकारों का हनन सरीखा होगा। इसके चलते समाज के विकास की गति धीमी पड़ जाती है। दैनिक जीवन में वे सक्षम रूप से भाग नहीं ले पाते हैं। तकनीक का होना ही पर्याप्त नहीं है उसका वितरण, उसका उपलब्ध होना भी महत्वपूर्ण है। न मिलने पर हम उनके लिए विकल्पों को कम कर देते हैं और भेदभाव पैदा करते हैं। अंग्रेजी न जानने वाले पहले भी वंचित थे और नई तकनीक का लाभ न पाकर उनका वंचन और सामाजिक खाई और बढ़ रहे हैं। मुख्यधारा में उनका आना, उनकी सतर्क भागीदारी समाज के स्तर पर जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने में लाभकर होगी।

(लेखक महात्मा गांधी हिंदी विश्वविद्यालय के कुलपति हैं)

response@jagran.com